2 औपनिवेशिक शासन और शिल्प

आप भारत के शिल्प संग्रहालयों में जब अद्‌भुत वस्तुएँ देखते हैं, तो आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि हमारे इतिहास में शिल्प के निर्यात का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यही नहीं, भारत के शिल्प समुदायों ने ऐसी उत्तम और कलात्मक वस्तुओं का निर्माण किया कि व्यापारी दूर-दूर से इनको खरीदने के लिए आते थे। सत्रहवीं शताब्दी में दरबारी संरक्षण, व्यापार, यजमानी प्रणाली और ग्रामीणों द्वारा रोज़मर्रा के उपयोग हेतु शिल्प की माँग (17वीं शताब्दी के उत्तर मध्य तक) के कारण स्थिर घरेलू बाज़ार बना और भारतीय शिल्प की विश्वव्यापी साख बनी।

> मुगलकालीन भारत के फ्रांसीसी यात्री टैवरनियर ने लिखा है कि फ़ारस के शाह के राजदूत (ई. 1628-1641) ने भारत से लौटने के पश्चात् अपने मालिक को रत्नजड़ित नारियल का खोल और तीस गज़ लंबा मलमल का कपड़ा भेंट किया, जो इतना अधिक महीन था कि इसे स्पर्श करने पर मुश्किल से महसूस किया जा सकता था।

व्यापार

भारत का अन्य देशों के साथ शिल्प व्यापार का लंबा इतिहास रहा है, जो 5000 वर्ष पूर्व की हड़प्पा सभ्यता से चला आ रहा है। सदियों पहले से रोम और ग्रीस के साथ व्यापार में बढ़ोतरी होती रही और इसके ऐतिहासिक साक्ष्य साहित्य और पुरातत्त्व खुदाइयों में देखे जा सकते हैं। फल-फूल रहे व्यापार से ओवरलैंड मार्ग जैसे सिल्क मार्ग की खोज हुई और यूरोप में एशिया के माध्यम से चीन से रेशम लाया गया। ऐसे प्रमाण हैं कि इस मार्ग पर पड़ने वाले व्यापारिक केंद्रों पर विभिन्न भाषा-भाषी व्यापारी आपस में मिलते थे। भारत की लंबी

तटरेखा पर जहाज़ निर्माण केंद्रों और बंदरगाहों की स्थापना की गयी। भूमध्यसागरीय देशों – श्रीलंका, म्यांमार, दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन तक जाने वाले समुद्री मार्ग का संगम साहित्य और विदेशी विवरणों में उल्लेख मिलता है।

मौर्य शासन काल (300 ई. पू.) तक व्यापारी और शिल्पकार, जो व्यापार के माध्यम से धनवान और शक्तिशाली बन गए थे, बौद्ध मठों के निर्माण के लिए दान देने में सक्षम थे। इनके साथ-साथ बढ़ई, लुहार, आभूषण निर्माता और सुनार, बुनकर और रंगरेज़, गंधी तथा पत्थर पर नक्काशी करने वाले भी मौजूद थे। मध्य-पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापार पहले ही अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण आधार बन चुके थे।

भारत से दक्षिण-पूर्व एशिया को सरोंग, मध्य-पूर्व को बेहतरीन व अति महँगी मलमल, पश्चिम अफ्रीका को क्रिश्चियन ऑल्टर फ्रंट्स, यूरोप को रेशम व ऊनी कपड़ा, वस्त्र सामग्री और बेड-हैंगिंग्स का निर्यात किया गया। ये सभी वस्त्र इन देशों में 'ऐश्वर्य का सामान' माने जाते थे।

कोरोमंडल तट से व्यापार पद्धति त्रिकोणीय थी। अरब के लोग कोरोमंडल तट तक सोना और चाँदी (बुलियन) ले जाते थे और इनका वस्त्रों के लिए विनिमय करते थे। इसके पश्चात् वे इन वस्त्रों को देकर मलेशिया से मसाले लेते थे और फिर मध्य-पूर्व वापस लौटते थे।

संपूर्ण प्राचीन और मध्यकालीन युग में भारतीय सूती वस्त्रों, रत्नों व जवाहरातों, मसालों, जैसे काली मिर्च और इलायची, हाथी-दाँत और चंदन की प्रसिद्धी ने व्यापार को लाभकारी व्यवसाय बना दिया। मोती जैसे रत्नों और हीरे जैसे अमूल्य पत्थर ने भारत को धन संपदा और प्राकृतिक संसाधनों के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई। धन संपदा और असाधारण कौशल की भूमि होने की प्रतिष्ठा से यूरोप के वे व्यापारी इसकी ओर आकर्षित हुए, जो भारतीय व्यापार में लाभ का हिस्सा प्राप्त करने के लिए युद्ध तक करने और अपनी जान जोखिम में डालने के लिए तैयार थे।

मार्को पोलो (1254-1324) ने अपनी पूर्व की यात्रा में गोलकुंडा का विवरण दिया है, जो कि अब आंध्र प्रदेश में है—

> यह राज्य हीरों का उत्पादन करता है। मैं आपको बताता हूँ कि इन्हें कैसे प्राप्त किया जाता है। आप जानते ही हैं कि इस राज्य में कई पर्वत हैं, जिनमें हीरे पाए जाते हैं, और ऐसा आप सुनेंगे। जब वर्षा होती है, तो पानी इन पर्वतों से अंदर जाता है, और संकरी घाटियों और गुफ़ाओं से गुज़रता है। जब वर्षा रुक जाती है और पानी निकल जाता है, तो लोग इन घाटियों में, जहाँ से पानी आता है, हीरों की खोज के लिए जाते हैं और उन्हें ये बहुतायत में मिल जाते हैं। गर्मियों में जब पानी की एक भी बूँद नहीं मिलती, तो हीरे पर्वतों में पाए जाते हैं।

तत्पश्चात् वह और रुचिपूर्ण तरीके से बताते हैं—

> अन्य तरीका, जिससे वे हीरे प्राप्त करते हैं इस प्रकार से है – जब बाज़ माँस खाते हैं, तब वे हीरे भी निगल लेते हैं। फिर रात में जब बाज़ वापस लौटते हैं, तो वे अपने मल के साथ निगले हुए हीरे भी विसर्जित करते हैं। लोग आकर इन्हें एकत्र करते हैं और उन्हें बड़ी मात्रा में हीरे मिल जाते हैं ... आप यह जान लें कि विश्व में इस राज्य को छोड़कर कहीं भी हीरे नहीं पाए जाते।

–रोनाल्ड लाथम
मार्को पोलो – द ट्रैवेलर

वस्त्र उत्पादन केंद्र के रूप में भारत

एक पुर्तगाली यात्री के अनुसार, ''केप ऑफ़ गुड होप (अफ्रीका में) से चीन तक हर पुरुष और महिला सिर से लेकर पाँव तक भारतीय करघों के उत्पादों से सज्जित थे।'' भारत उपनिवेशवाद के आरंभ होने तक विश्व में वस्त्रों का सबसे बड़ा निर्यातक था।

सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय देशों के व्यापारी भारत में यहाँ के वस्त्र तथा मसाले लेने आते थे, जो कि माँस को प्रशीतन करने के काम आते थे, जब कि प्रतिरक्षण करने की विधि मौजूद नहीं थी। अफ्रीका से अमेरिका तक दासों को ले जाने का ब्रिटेन के साथ एक त्रिकोणीय व्यापार विकसित हुआ, ताकि पर्याप्त लाभ मिल सके और भारतीय वस्तुएँ खरीदने के लिए आवश्यक मुद्रा जुटाई जा सके।

> 17वीं और 18वीं शताब्दी में पश्चिम देशों में भारतीय वस्त्रों का इस्तेमाल और उनके उपयोग में बढ़ोतरी होना विस्तार की आश्चर्यजनक प्रक्रियाओं में से एक थी, जिसकी तुलना तंबाकू, आलू, कॉफ़ी या चाय की खोज और उनके व्यापक प्रचलन से की जा सकती है।
>
> – के. एन. चौधरी

1599 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना से अंग्रेज़ों ने और तत्पश्चात् डच और फ्रांसीसियों ने भारतीय वस्त्रों का लंदन को निर्यात करना आरंभ किया, ताकि उसे पुनः पूर्वी भूमध्यसागरीय देशों को निर्यात किया
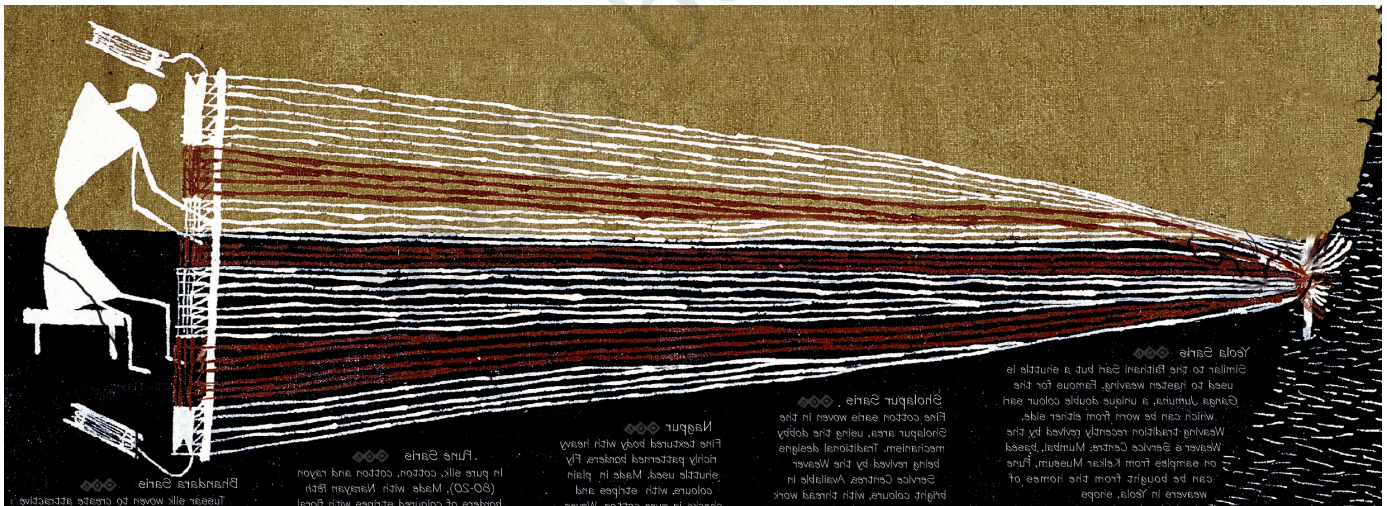
जा सके। शीघ्र ही उन्होंने यह महसूस कर लिया कि इन पक्के रंग वाले वस्त्रों का बाज़ार बहुत बड़ा है। उस समय यूरोप में शिल्पकारों को कपड़े रंगने की तकनीकों की जानकारी नहीं थी और वे वस्त्रों पर रंगीन रंजक लगाते थे, जो कपड़े को धोने पर उतर जाता था या परतों में जम जाता था।

1625 तक इंग्लैंड में लोगों की रुचि में एक क्रांति की शुरुआत हुई। अधिकांश भारतीय वस्त्रों का प्रयोग घरेलू फ़र्नीचर की अमूल्य वस्तुओं तथा बिस्तरों को सजाने के लिए किया जाता था। लोग चटख रंगों और नए फूलों वाले डिज़ाइनों की ओर आकर्षित होते थे, जो यूरोपीय कपड़ों में नहीं पाए जाते थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड, फ्रांस और नीदरलैंड में भारतीय छींट वस्त्रों की माँग बढ़ गई।

चतुर व्यापारियों ने महसूस किया कि वे खास डिज़ाइन बनाकर बड़े बाज़ार तक पहुँच सकते हैं। अतः ईस्ट इंडिया कंपनी ने पलेमपोर वृक्ष को, जो प्रसिद्ध *ट्री ऑफ़ लाइफ़* डिज़ाइन बना, चुना और उसके निर्माण में मार्गदर्शन किया। उन्होंने इंग्लैंड में कश्मीरी शॉलों की बुनाई की भी नकल करनी आरंभ कर दी।

कारखाने और व्यापार

सत्रहवीं शताब्दी में इसके साथ-साथ ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और फ्रांस तथा हॉलैंड की अन्य व्यापारिक कंपनियों ने भारतीय तट के आसपास कारखाने और नयी टाउनशिप बना दी, जहाँ पर विशेष तौर पर निर्यात बाज़ार हेतु निर्मित माल को भंडारित किया जाता था। इनके उत्पादन के लिए बड़ी संख्या में शिल्प समुदायों का संकेंद्रण, स्थानीयकरण और बड़े पैमाने पर प्रवसन हुआ। शिल्पकार शहरी केंद्रों और तटीय शहरों की ओर आकर्षित हुए क्योंकि कई अमीर उपभोक्ताओं तथा बड़े निर्यात बाज़ार तक यहाँ से पहुँचा जा सकता था।

उन्नीसवीं शताब्दी तक कई सदियों पुरानी शिल्पकारी में परिवर्तन आने लगा। उड़ीसा और बंगाल के पारंपरिक पटुआ कारीगरों ने लकड़ी पर नक्काशी, ब्लॉक प्रिंटिंग का कौशल सीखा और नयी कला का सृजन किया, जिसे हम आज कालीघाट कला कहते हैं। इसे ग्रामीण बंगाल के अमीर ज़मींदारों ने संरक्षण प्रदान किया, जबकि वाराणसी के बाज़ार अवध और बंगाल के नव-धनाढ्यों के लिए बनाए जाने वाले ब्रोकेड के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे।

परिवर्तन से सामंजस्य – एंग्लो-इंडियन कलकत्ता* में पारंपरिक पटुआ कारीगर

पट चित्रों की ग्रामीण लोक परंपरा के अंतर्गत कालीघाट चित्र एक महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। इस कला की नवीनता उन ग्रामीण प्रवासी पटुओं के शहरी वातावरण को आत्मसात करने पर निर्भर करती थी, जिन्होंने अपने समुदाय में प्रचलित पारंपरिक तौर-तरीकों के स्थान पर नयी सुविधाओं और दबावों को अपनाया। चित्रों को कम मूल्य में शीघ्र उत्पादित करने और शहरों के बढ़ते हुए बाज़ार के कारण बड़ी संख्या में बनाने के कारण उनके रूप और आकार में परिवर्तन आया। इससे, उदाहरणार्थ कपड़े पर गोंद टेम्परा के स्थान पर कागज़ पर जल रंगों का प्रयोग होने लगा और पट चित्रों की कथा शैली रिक्त पार्श्व वाली एकल प्रतिमाओं वाले दृश्य चित्र में परिवर्तित हो गई। इससे कालीघाट चित्रों में नए विषयों और आकृतियों की एक शृंखला का समावेश हुआ, जिसमें ब्रिटिश और कंपनी शैली के चित्रों के विशिष्ट विषय सम्मिलित थे। यहाँ अधिकतर विषय कलकत्ता के बाबुओं के सामाजिक परिवेश से लिए गए, जिससे परिचित होने के लिए पटु चित्रकारों को संघर्ष करना पड़ा।

कलकत्ता के नए एंग्लो इंडियन समाज में पटुआ चित्रकारों की तीव्र नैतिक असुविधा और अव्यवस्था चित्रों में अत्यधिक शक्तिशाली ढंग से व्यंगात्मक रूप से चित्रित हुई है...

शहर के आग्रही तरीकों और माँगों के प्रति लचीलापन न होना दो महत्त्वपूर्ण स्तरों पर दिखाई दिया, जब ये चित्रकार अपने जातिगत समुदाय और रूढ़ियों के भीतर सिमटे रहे। शहर में आने के बाद ये उन ग्राम-गोत्रों से जुड़े रहे, जिनसे इनका उद्‌भव हुआ था और इनकी आनुवंशिक और जातिगत मान्यताएँ बनी रहीं। कलात्मक रूप से भी, उन्होंने प्रत्यक्षतः अप्राकृतिक रूप से द्वि-आयामी शैली में कार्य किया और चाहे वे कोई भी नया तत्त्व ग्रहण करें, उन्होंने अपनी शर्तों पर परिवर्तन किया। अतः पानी के रंगों का उधार लिया गया माध्यम सपाट, चटख रंगों के पारंपरिक रूप में बदल दिया गया और आउटलाइनों में शेडिंग का प्रयोग मुख्यतः रेखाओं को उभारने और चेहरों तथा चित्रों के उभार को दर्शाने के लिए किया गया और इसने उनके व्यंग्य की प्रकृति को बेहतरीन ढंग से प्रदर्शित किया...

इन सस्ते चित्रों के ग्राहक शहर के आम लोग थे, जो कलकत्ता के उच्च वर्ग के बदले हुए मूल्यों और पश्चिमी तरीकों से खुद को समान रूप से अलग पाते थे।

–ताप्ती गुहा-ठाकुरता
द मेकिंग ऑफ़ न्यू इंडियन आर्ट

* वर्तमान में कोलकाता

कश्मीरी शॉल

1600 से 1860 तक यानी लगभग 250 वर्षों से भी अधिक समय तक कश्मीरी शॉल घाटी की अर्थव्यवस्था का मुख्य सहारा था। यह ऐश्वर्यपूर्ण वस्त्र था, जिसका कश्मीर में एक के बाद एक शासन करने वाले मुगल, अफ़गान, सिक्ख और डोगरा वंशों ने संरक्षण किया। उन्नीसवीं शताब्दी तक यह यूरोप ही नहीं बल्कि राजदरबारों और दक्षिण एशिया में सभी वाणिज्यिक शहरों में प्रसिद्ध हो चुका था। परिणामत: शॉल निर्माण इकाइयों के प्रभारियों ने इस राज्य की अर्थव्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया क्योंकि शॉलों की बिक्री से समग्र राज्य से प्राप्त भूमि राजस्व से भी अधिक धन प्राप्त होता था। 1861 के शीर्ष पर इससे अत्यधिक राजस्व की प्राप्ति हुई।

ज्ञात रहे कि कश्मीर की अर्थव्यवस्था में शॉल के व्यापार का प्रभुत्व था। डोगरा शासकों ने दाग-शॉल नामक विभाग बनाया, जिसने प्रत्येक शॉल के निर्माण के प्रत्येक चरण पर, कर नियंत्रित किया और कर वसूल किए। पश्म के आयात, रंगने और यहाँ तक कि कढ़ाई की हरेक लाइन के लिए भी शुल्क लगाए गए। ये कर इतने दबावपूर्ण हो गए कि एक सामान्य शॉल कामगार द्वारा कमाए गए सात रुपए में से 5 रुपए राज्य को देने पड़ते थे। सब्सिडीयुक्त अनाज का वितरण केवल शॉल निर्माताओं तक सीमित होने ने उनके घावों पर और नमक छिड़क दिया।

इस कर के बावजूद उन्नीसवीं सदी के अंत में इन बेशकीमती फ़ैशन की वस्तुओं की यूरोप में बढ़ती माँग के कारण कश्मीरी शॉल उद्योग और फलने-फूलने लगा। लेकिन स्कॉटिश शहर पैसले में कश्मीरी शॉल की नकल का उत्पादन होने से कश्मीरी शॉल के उत्पादन पर अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

शॉल व्यापारी खुशहाल हो गए थे और उनके तथा उनके विलासितापूर्ण नवीन उत्पादों की माँग के कारण राज्य खुशहाल था। उनके लाभ का प्रतिशत-500 प्रतिशत था। 1871 तक ₹28 लाख तक की कीमत के शॉल का निर्यात किया गया। 1890 में राज्य ने दाग-शॉल विभाग को समाप्त करते हुए पूर्णत: यह कार्य बंद कर दिया।

औपनिवेशिक और भारतीय प्रदर्शनी, 1886 के भारतीय केटलॉग में, विभाग को समाप्त करने के गंभीर परिणामों को निम्न प्रकार से बताया गया—

> जो शॉल निर्माण कश्मीर में पहले आधा मिलियन प्रति वर्ष की आमदनी करता था, अब मृतप्राय है। सरकार द्वारा यदि इसके संरक्षण के उपाय नहीं किए गए तो उत्कृष्ट शॉल बुनने की कला शायद अब से अगले 15-20 वर्षों में विलुप्त हो जाएगी। लंदन और पेरिस के गोदाम शॉलों से भरे पड़े हैं, इन्हें कोई खरीदार नहीं मिल रहा और कश्मीर में जो मूल्य दस वर्ष पहले था, अब उसका एक-तिहाई रह गया है।

शिल्प उत्पादक से कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता होने तक

1800 से 1860 तक औद्योगिकी क्रांति ने इंग्लैंड और यूरोप में निर्माण प्रक्रिया को परिवर्तित कर दिया, जिससे भारत में शिल्प व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

1813 में स्थानीय वस्त्र उद्योग के दबाव में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय वस्त्रों के आयात पर भारी कर लगाना आरंभ कर दिया, जबकि दूसरी ओर ब्रिटिश माल का भारत में लगभग नि:शुल्क प्रवेश था। इसके घातक परिणाम सभी जानते हैं – 1814 से 1835 के बीच, भारत का निर्यात किए जाने वाला ब्रिटिश सूती माल एक मिलियन यार्ड से बढ़कर 31 मिलियन यार्ड हो गया, जबकि उसी सत्रहवीं शताब्दी में निर्यात किए गया भारतीय सूती माल अपने मूल के तेरहवें भाग के बराबर रह गया। फल-फूल रहे वस्त्र उत्पादक मुख्य शहर जैसे – ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत, मदुरै सब बेकार हो गए। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने भारत के वस्त्र व्यापार को नष्ट कर दिया और हम हथकरघा वस्त्रों के निर्यातक से कच्चे सूती माल के निर्यातक बन गए। भारत आयातित मिल-निर्मित कपड़े का बाज़ार बन गया, जिसने कि घरेलू वस्त्रों की कीमत भी कम कर दी।

अंग्रेज़ों द्वारा लगाए गए नए करों तथा वस्त्र उत्पादन में परिवर्तन से किसान, जो पूर्णतया कृषि पर निर्भर थे और भी अधिक कमज़ोर हो गए। यूरोप में विस्थापित हथकरघा बुनकरों को नए उद्योगों में नौकरी मिल गई, जिसमें महिलाओं को भी नियोजित किया जाता था। लेकिन भारत में पुरुषों के पास भी ऐसे विकल्प कम ही थे। वे पहले से ही दरिद्र कृषि श्रम बाज़ार में चले गए, जहाँ उन्हें और भी कम मज़दूरी मिलती थी। वस्त्र उद्योग के ढहने से न केवल हज़ारों लोग प्रभावित हुए अपितु लौह, ग्लास, कागज़, पॉटरी और आभूषण उद्योग भी प्रभावित हुए।

गवर्नर-जनरल विलियम बेंटिक ने 1834 में लिखा है, ''वाणिज्य इतिहास में इस दुर्गति के समान कुछ नहीं है। भारत के मैदानों में काम कर-करके यहाँ के कपास बुनकरों की हड्डियाँ चरमरा गई हैं।''

वस्त्र व्यापार पर उपनिवेशवाद का प्रभाव

1860 से पूर्व, ब्रिटेन में तीन-चौथाई कपास का आयात अमेरिका से होता था। ब्रिटिश सूती कपड़ा निर्माता काफ़ी लंबे समय से अमेरिका से आपूर्ति पर निर्भरता से चिंतित थे।

1857 में ब्रिटेन में कपास आपूर्ति संघ की स्थापना हुई और 1859 में मैनेचेस्टर कॉटन कंपनी बनी। उनका उद्देश्य इसके विकास के लिए विश्व के प्रत्येक भाग में कपास उत्पादन को बढ़ावा देना था। भारत को ऐसे देश के रूप में देखा जाता था, जो अमेरिकी आपूर्ति न होने पर लैंकेशर को कपास की आपूर्ति कर सकता था। भारत में उपयुक्त मिट्टी, कपास की खेती के लिए उचित जलवायु और सस्ता श्रम उपलब्ध था।

1861 में अमेरिकी सिविल युद्ध होने पर ब्रिटेन के कपास मंडलों में भय की लहर दौड़ गई। अमेरिका से कच्चे माल का आयात तीन प्रतिशत से भी कम हो गया। भारत और अन्य देशों को तुरत-फुरत संदेश भेजे गए कि ब्रिटेन को कपास निर्यात में बढ़ोतरी की जाए। बंबई* में कपास व्यापारियों ने आपूर्ति का मूल्यांकन करने और इसकी खेती को बढ़ावा देने के लिए कपास उत्पादक ज़िलों का दौरा किया। कपास का मूल्य बढ़ने पर ब्रिटिश माँग को पूरा करने के लिए निर्यात में बढ़ोतरी की गई। इसके लिए शहरी साहूकारों

बंबई बंदरगाह – परवर्ती अट्ठारहवीं शताब्दी का एक रेखाचित्र
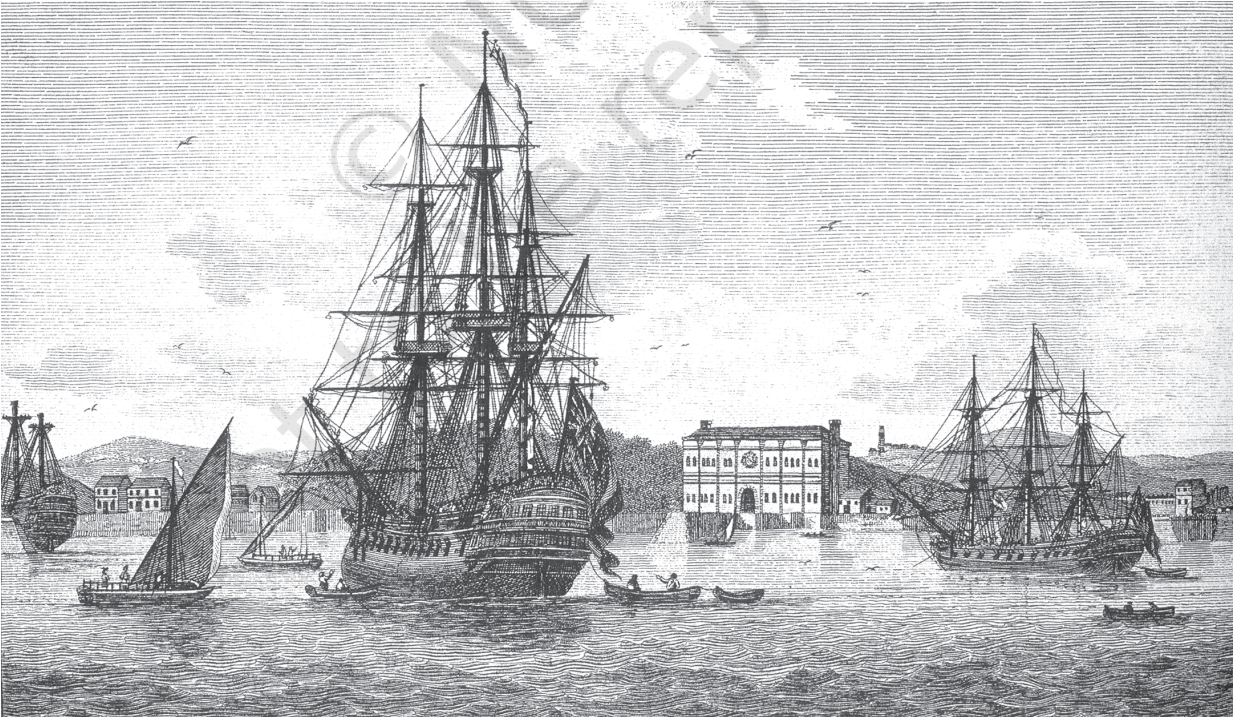
* वर्तमान में मुंबई

को अग्रिम दिए गए । साहूकारों ने बदले में उन ग्रामीण ऋणदाताओं को ऋण दिया, जिन्होंने उत्पाद को सुरक्षित रखने का वादा किया था।

इन कार्यकलापों का दक्कन के ग्रामीण भाग पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अचानक से दक्कन में रैयतों को प्रत्यक्षत: असीमित ऋण मिलने लगा। उन्हें कपास की खेती प्रति एकड़ भूमि के लिए ₹100 अग्रिम दिए गए। साहूकार दीर्घकालिक ऋण देने के लिए ज़रूरत से ज़्यादा इच्छुक थे। 1862 तक ब्रिटेन में 90 प्रतिशत से अधिक कपास का आयात भारत से किया गया। अंग्रेज़ों द्वारा लाए गए करों और वस्त्र उत्पादन में परिवर्तन से किसान, जो कि पूर्णत: कृषि पर निर्भर थे, उनका और भी शोषण होने लगा।

ऋण बंद होना

लेकिन कुछ ही वर्षों में अमेरिकी गृह युद्ध समाप्त हो गया और अमेरिका में कपास उत्पादन का पुनर्जीवन हुआ। ऐसे में भारत से ब्रिटेन को कपास के निर्यात में धीरे-धीरे गिरावट आने लगी।

जब गृह युद्ध समाप्त हुआ ब्रिटेन ने दो कारणों से अमेरिका के साथ पुन: कपास का व्यापार आरंभ किया – अमेरिकी कपास उत्तम प्रकार का था (अमेरिकी प्रजातियों के लंबे, मज़बूत रेशों के कारण) और दूसरा अमेरिका और केरीबियन कृषि-क्षेत्रों से प्राप्त कपास अधिक सस्ता था क्योंकि इसका उत्पादन दासों द्वारा किया जाता था, जिनकी मज़दूरी का कोई भुगतान नहीं होता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक अमेरिका में कपास की खेती और कटाई दासों का प्रमुख व्यवसाय बन गया था।

दक्कन में निर्यात व्यापारी और साहूकार अब दीर्घकालिक ऋण देने के इच्छुक नहीं थे। इसलिए उन्होंने नया ऋण बंद करने और केवल किसानों को अग्रिम रूप में देना सीमित करने और बकाया ऋण को वापस माँगने का निर्णय लिया, जिससे किसानों और शिल्पकारों की स्थिति और खराब हो गई।

ब्रिटेन में औद्योगिकीकरण

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति ने सूती कपड़ा निर्माताओं की स्थिति बदल दी क्योंकि ब्रिटेन से होने वाले निर्यात में वस्त्र प्रमुख थे। 1738 में बर्मिंघम, इंग्लैंड के लुइस पॉल और जान व्याट ने रोलर के दो सेट का उपयोग करते हुए अधिक सामान के सूत के लिए रोलर स्पिनिंग मशीन और फ़्लायर-एंड-बाबिन सिस्टम को पेटेंट कराया। बाद में 1764 में स्पिनिंग जेनी के आविष्कार से ब्रिटिश बुनकर उच्च दरों पर कॉटन यार्न और कपड़ों का तेज़ी से उत्पादन करने लगे। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ब्रिटेन के मैनचेस्टर शहर को सर्वत्र कपास उद्योग के विस्तार और वैश्विक कपास व्यापार में केंद्रीय स्थान के रूप में उसकी भूमिका के कारण कॉटनो पोलिस नाम दिया गया। 1793 में अमेरिकन एली व्हिटनी द्वारा कॉटन गिन के आविष्कार से ब्रिटेन और अमेरिका में उत्पादन क्षमता में और अधिक सुधार हुआ।
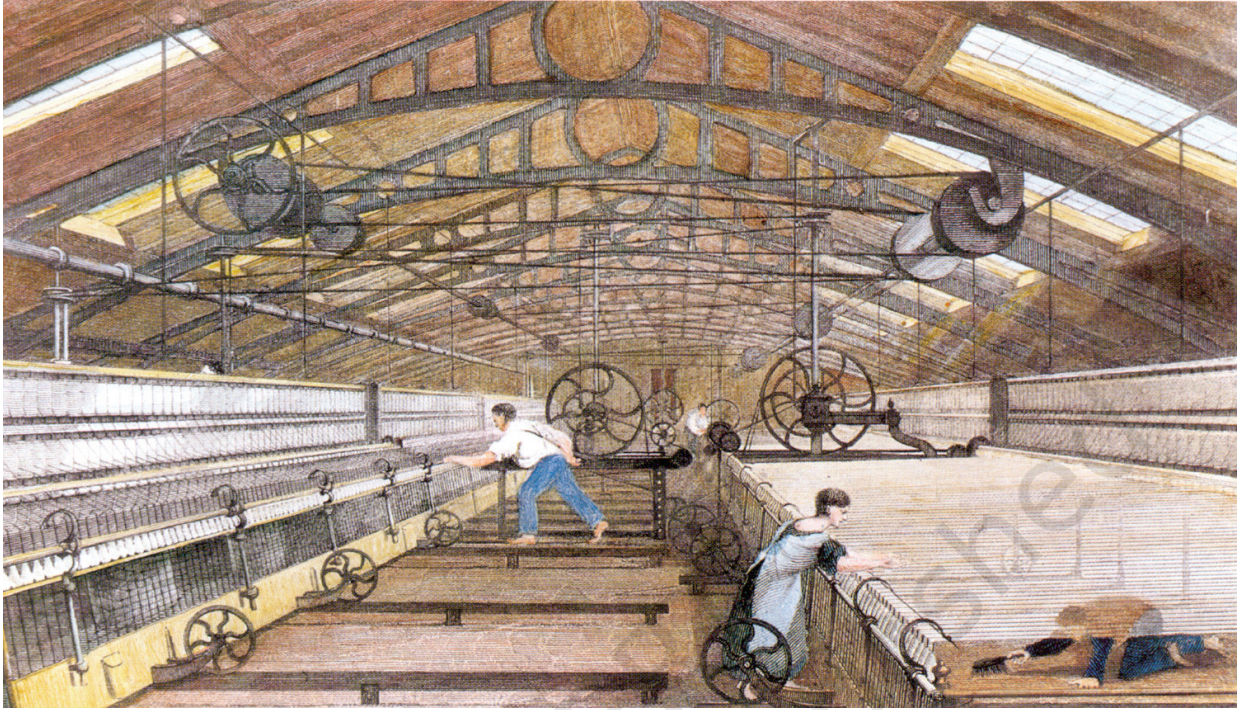
1830 में कताई का कारखाना

उन्नत प्रौद्योगिकी और विश्व बाज़ारों के बढ़ते नियंत्रण से ब्रिटिश व्यापारियों को एक वाणिज्यिक शृंखला विकसित करने में सहायता मिली, जिसमें (सबसे पहले) औपनिवेशिक कृषि-क्षेत्रों से कच्चे कपास के रेशे खरीदे जाते थे, लैंकेशर की मिलों में उन्हें सूती कपड़ों में संसाधित किया जाता था और तत्पश्चात् पश्चिम अफ्रीका, भारत और चीन (वाया शंघाई और हांग-कांग) के बंधक औपनिवेशिक बाज़ारों को ब्रिटिश जहाज़ों द्वारा पुनः निर्यात किया जाता था।

भारत में औद्योगिक क्रांति से व्यापार उलट गए, जिसमें भारत से इंग्लैंड को कपास का निर्यात किया जाता था और मशीन से बने सूती कपड़े वापस भारत में लाकर बेचे जाते थे। ब्रिटिश उद्योगों के लिए भारत में कच्चे माल के उत्पादन को समर्थन करने और ब्रिटिश उत्पादों की भारत में खपत की औपनिवेशिक नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया। भयंकर भुखमरी, अत्यधिक कर और राजस्व का इंग्लैंड को प्रत्यावर्तन करना – भारतीय शिल्प समुदाय की स्थिति को बिगाड़ने के प्रमुख कारक थे। औद्योगिकीकरण के विनाशक प्रभावों से ही उपनिवेशी शासन से स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान यह गांधी जी का तत्त्वज्ञान बना।

उत्थान, पतन, उत्थान...

पंद्रहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी तक चीन और भारत का लगभग आधे विश्व व्यापार पर नियंत्रण था। यह स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के ब्रिटिश साम्राज्य का भाग बनने तक बनी रही और चीन के व्यापार पर उसका नियंत्रण होने लगा, जो समुद्री रास्तों को नियंत्रित करते थे, यानी इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका का। भारत स्वतंत्र हो गया और चीन बीसवीं शताब्दी के मध्य में साम्यवादी हो गया तथा दोनों ने पुन: अपनी अर्थव्यवस्था का निर्माण करना आरंभ किया। इक्कीसवीं सदी के आरंभ में चीन और भारत विश्व की तेज़ी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाएँ बनीं और वैश्विक व्यापार का गुरुत्व केंद्र पूर्व की तरफ़ अंतरित होता दिखाई देने लगा। निम्नलिखित पृष्ठों में 500 वर्षों में एशियाई दिग्गजों के विकास पथ की झलकी दी गई है–

सोलहवीं शताब्दी	भारत	लाल सागर और भूमध्यसागरी बंदरगाहों से होकर अरब व्यापारियों द्वारा भारतीय सामग्री को जहाज़ों पर यूरोप ले जाने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की आमदनी के 24.5 प्रतिशत पर पहुँच गई, जो चीन के बाद दूसरे स्थान पर था। भारत व्यापार के क्षेत्र में एक वांछित संतुलन बनाए था, जिसे वस्त्रों, चीनी, मसालों, नील, गलीचों आदि बेचने पर सोना और चाँदी मिलता था।
	चीन	यूरोप और चीन के मध्य प्रत्यक्ष समुद्री व्यापार पुर्तगाल से आरंभ हुआ, जिसने 1557 में मकाऊ में एक आउटपोस्ट लीज़ पर दिया। अन्य यूरोपियनों ने इसका अनुसरण किया। भारत और चीन एक-दूसरे के साथ स्थल मार्ग के द्वारा व्यापार करते थे।
सत्रहवीं शताब्दी	भारत	इस शताब्दी में मुगल भारत की वार्षिक आय ब्रिटिश बजट से अधिक थी। जब मुगल साम्राज्य शाहजहाँ के शासन में अपने चरम पर पहुँचा तो भारतीय निर्यात इसके आयात से अधिक था। यह कई वस्तुएँ बेच रहा था और प्रत्येक को अत्यधिक मात्रा में। चीनी जहाज़ क्विलोन और कालीकट में उतरते थे, जबकि खंभात में व्यापार इतना अधिक था कि 3000 से भी अधिक जहाज़ रोज़ बंदरगाह पर आते थे।
	चीन	चीन का विश्व व्यापार के एक-तिहाई भाग पर नियंत्रण जारी था। अंग्रेज़ों ने 1637 में केंटन में ट्रेडिंग पोस्ट की स्थापना की। क्विंग शासक द्वारा 1680 में समुद्री व्यापार प्रतिबंधों में छूट दिए जाने पर व्यापार और बढ़ा। ताइवान क्विंग शासन के अधीन आ गया, लेकिन समुद्री व्यापार के कारण चीनी आशंकित थे।

	अट्ठारहवीं शताब्दी
औरंगज़ेब का भारत की विश्व आय में 24.4 प्रतिशत हिस्सा था, जो विश्व में सबसे अधिक था। लेकिन मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के वाणिज्यिक समुदाय और विश्व के बड़े भाग के साथ व्यापार संबंधों को तोड़ दिया।	भारत
1760 में जब चीन का विश्व के व्यापार में हिस्सा कम होने लगा, तब सरकार ने विदेशियों और विदेशी जहाज़ों के लिए विनियम बनाए। विदेशी व्यापारियों के लिए केवल केन्टोन बंदरगाह ही खुला था। स्वतंत्रता युद्ध (1776) के बाद अमेरिकियों ने चीन के साथ व्यापार आरंभ किया। यह अंग्रेज़ों के लिए एक अवरोध था।	चीन
	उन्नीसवीं शताब्दी
1820 में भारत की अर्थव्यस्था पर पूर्ण रूप से उन्नीसवीं शताब्दी ईस्ट इंडिया कंपनी का नियंत्रण था, जो विश्व की अर्थव्यस्था का 16 प्रतिशत था। कंपनी द्वारा भारतीय कृषि पद्धति को पूरी तरह बदल दिया गया। 1870 तक विश्व आय का 12.2 प्रतिशत भारत के पास था।	भारत
क्विंग राजा ने विदेशी व्यापारियों के लिए सभी बंदर/गोदी खोलने से इनकार कर दिया। चीन और भारत के बीच अफ़ीम के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया। इस अवधि के दौरान दो बार चीन और ब्रिटेन युद्ध हुआ। हार के बाद चीन ने अफ़ीम व्यापार को स्वीकार कर लिया और पश्चिमी व्यापारियों को आने की अनुमति दे दी। 1843–1855 के बीच आठ वर्षों में चाय का निर्यात 500 प्रतिशत बढ़ गया।	चीन
	बीसवीं शताब्दी
1913 में भारत की आय विश्व का मात्र 7.6 प्रतिशत थी। स्वतंत्रता के पाँच वर्ष पश्चात् 1952 में वह केवल 3.8 प्रतिशत बिलियन पाउंड तक चली गई थी, जबकि विश्व की अर्थव्यवस्था 3.1 प्रतिशत तक गिर गई थी। 1991 में उदारवादी अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई एवं 1998 में भारत का विश्व की अर्थव्यवस्था में 5 प्रतिशत हिस्सा हो गया, जो 2005 तक 3,815.6 बिलियन पाउंड होकर विश्व की अर्थव्यवस्था का 6.3 प्रतिशत हो गया।	भारत
1949 में चीन पर कम्युनिस्ट शासन शुरू होने तक वहाँ से केवल सूत, कोयला, कच्चा तेल, कपास और अनाज का ही उत्पादन होता था। माओ ज़ेडाँग ने देश को साम्यवादी रास्ते पर लाया। 1980 में डेग ज़िआओपिंग के अधीन चीन में बदलाव आया और शेनज़ेन में प्रथम विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र स्थापित हुआ। 1986 में डेंग की 'खुले-दरवाज़े' वाली नीति ने विदेशी विनिमयन को प्रोत्साहित किया। 1992 में डेंग ने बाज़ार सुधार में तेज़ी लायी और 'साम्यवादी बाज़ार व्यवस्था' की स्थापना की। पहली बार, चीन विश्व के प्रथम दस आर्थिक दृष्टि से मज़बूत देशों में से गिना गया। 2001 में वह विश्व व्यापार संघ में सम्मिलित हुआ।	चीन

नए व्यवसाय, पुराने कौशल–कर्मकार से लेकर प्रिंटिंग प्रेस तक

1860 और 1870 तक बाट-तला के लकड़ी और धातु पर नक्काशी का कार्य करने वाले कारीगर कलकत्ता के कला बाज़ार में सबसे प्रमुख समुदाय के रूप में सामने आए।

आरंभ में, पारंपरिक कारीगर समूहों, जैसे लुहारों, ताँब्रकार, सुनारों, कर्मकारों (कंसारी, शंखारी, स्वर्णकार और कर्मकार) ने सिरामपुर और कलकत्ता में अंग्रेज़ों की नयी प्रिंटिंग प्रेस में रोज़गार मिलने पर, धातु कार्य के अपने पुराने कौशल का उपयोग टाइप-फ़ेस तथा गढ़ाई वाले ब्लॉक बनाने में किया। 1820 से 1830 तक इन प्रिंट बनाने वालों का एक अलग समुदाय बन गया, जो मुख्यत: सस्ती बंगाली चित्रयुक्त पुस्तकों में छोटे आकार के चित्र बनाने संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्यत: लकड़ी के नक्काशी वाले ब्लॉक तैयार करता था।

इसके परिणामस्वरूप इनका निर्माण करने वाले कारीगरों की सामाजिक स्थिति और वाणिज्यिक संभावनाओं में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बाट-तला के नक्काशीकार (*एनग्रेवर*) पारंपरिक कारीगर समुदायों से थे और उनके पास विभिन्न धातुओं की कटाई, उन पर खुदाई करना, कूंड बनाना और कतरे काटना जैसे कौशल थे। उनमें से कुछ तो सूत्रधार या शंखारी कारीगर समुदाय के उत्तराधिकारी भी थे, जिससे अधिकांश कालीघाट पटुओं से संबंध रखते थे। लेकिन कालीघाट पटुओं की तरह नक्काशी करने वालों ने नए, सुनम्य प्रिंटर समुदाय का हिस्सा बनने के लिए कई पैतृक और जातिगत मान्यताओं को छोड़ दिया। नक्काशी और प्रिंटिंग का कौशल और अधिक विस्तृत और प्रतियोगी बन गया और इसमें अन्य समुदायों के लोग भी आने लगे। कुछ ब्राह्मण भी आए, जो इस व्यापार में कोई नया पेशा खोजने की इच्छा रखते थे।

–ताप्ती गुहा-ठाकुरता
द *मेकिंग ऑफ़ न्यू इंडियन आर्ट*

कंपोज़ीशन ट्रे में रखी लीड की टाइप; (उपचित्र) अस्थायी खाचें में जमाई हुई सन्नियोजित टाइप

अभ्यास

1. स्वयं की सत्रहवीं शताब्दी के एक अंग्रेज़ यात्री के रूप में कल्पना करें। अपनी आँखों से देखे गए हस्तशिल्पों का वर्णन करें। आप क्या और क्यों खरीद कर घर ले जाना पसंद करेंगे?
2. उपनिवेशवाद ने भारत को एक शिल्प निर्माता देश से मात्र कच्चे माल की आपूर्ति वाला देश बना दिया – इस बदलाव का एक लघु वर्णन करें और बताएँ कि किस प्रकार भारत में शिल्प उद्योग पर इसका प्रभाव पड़ा?
3. भारत में कपड़ा उद्योग के इतिहास पर एक चार्ट बनाएँ या कहानी चित्रित करें।
4. उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिकीकरण ने इंग्लैंड में शिल्प उत्पादन को बदल दिया। बीसवीं शताब्दी में किस प्रकार उसने भारत में शिल्प उद्योग को बदला?
5. पिछले पाँच सौ वर्षों में भारत और चीन के बीच व्यापार की तुलना कर अंतर बताएँ। इसे ग्राफ़ अथवा सूची के माध्यम से चित्रित करें।